विकासशील देशों के लिए भिन्न हो रणनीति

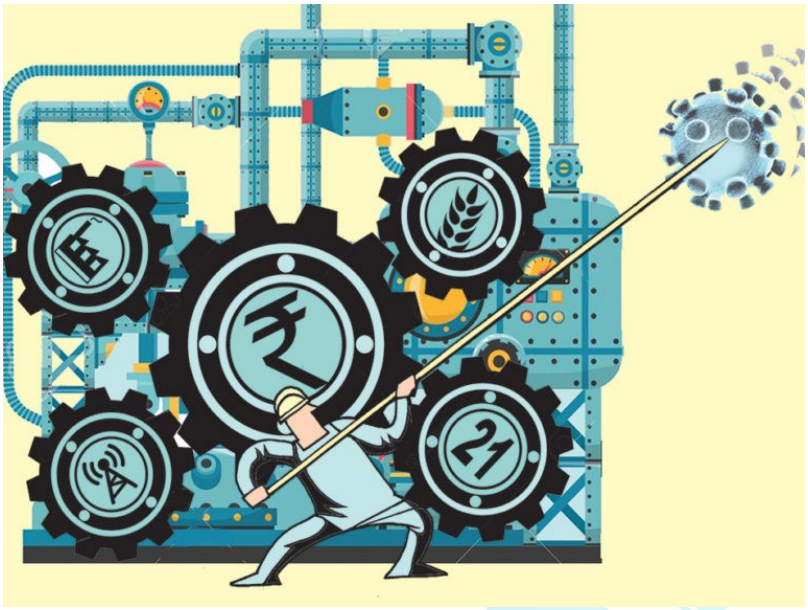

लॉकडाउन के बाद की ध्वस्त हुई अर्थव्यवस्था को देखते हुए अनके देशों ने इसमें ढील देने पर विचार करना शुरू कर दिया है। कोरोना के बहुतायत वाले अमेरिका जैसे देश ने भी इस मुद्दे पर काम करना शुरू कर दिया है। भारत में अधिकांशतः उच्च-मध्य वर्ग ऐसा है, जो अपने को अधिक से अधिक सुरक्षित रखने के लिए अभी लॉकडाउन के कड़े उपायों को बनाए रखना चाहता है। वामपंथी विचारधारा के लोग इसे सामाजिक-आर्थिक दंड के रूप में देख रहे हैं। वे मानते हैं कि इससे केवल उनकी रक्षा हो सकेगी, जो सम्पन्न हैं। वे ही अपने को अलग-थलग रख सकते हैं। बाकी जनता महामारी से नहीं, तो भूख से ही मर जाएगी।

अगर हम 1918 के स्पेनिश फ्लू और 1957 के एशियन फ्लू की बात करें, तो अनेक सरकारों ने आर्थिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य को लेकर समझौताकारी समन्वय पर काम किया था। भारत की स्थितियां अलग हैं। हमें यह समझने की जरूरत है कि विकसित देशों की तरह यहाँ कल्याणकारी योजनाएं नहीं चलाई जा सकतीं। अमेरिका और यूरोप के श्रमिक, बेरोजगारी भत्ते के लिए तुरंत ही पंजीकरण करा सकते हैं। कुछ यूरोपीय कंपनिया तो महामारी के दौर में कर्मचारियों के वेतन की निरंतरता को बनाए रखने के लिए सरकार से सहायता प्राप्त कर रही हैं।

भारत ने भी मनरेगा से लेकर जन धन योजना जैसी अनेक कल्याणकारी योजनाएं चलाई हैं। परन्तु प्रवासी और शहरी श्रमिकों के लिए इनका लाभ ले पाना इतना आसान नहीं है।

सच्चाई यह है कि सभी के लिए एक ही नियम लागू नहीं किया जा सकता। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था अधिक नाजुक है। यही कारण है कि चीन ने 6 करोड़ की जनसंख्या वाले हुबेई प्रांत को सील तो किया, लेकिन अब तेजी से अवरोधों को हटाया जा रहा है। इससे संक्रमण का खतरा बढ़ने का पूरा अंदेशा है। फिर भी ऐसा किया

जा रहा है। अमेरिका के अनेक नामी विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञ भी बुजुर्गों और बच्चों की रक्षा के लिए किए जा रहे प्रयासों को सफल बनाने के लिए बंद को समाप्त करने की अपील कर रहे हैं। मानव के जीवन पर भारी पड़ने वाले इस निर्णय पर विशेषज्ञों का कहना है कि बेरोजगारी और निर्धनता से कहीं अधिक मौतें हो सकती हैं। लॉकडाउनजनित अवसाद के घातक होने की भी आशंका व्यक्त की जा रही है।

भारत में इस प्रकार की आशंकाएं दोगुनी हो जाती हैं। यहाँ बेरोजगार युवकों की संख्या कहीं अधिक है। भारत में जितनी आर्थिक सहायता का ऐलान किया गया है, वह विकसित देशों द्वारा दी जा रही सहायता का अंशमात्र है।

भारतीय नीति निर्धारकों ने व्यापारिक समुदाय और अर्थशास्त्रियों की उस मांग को भी खारिज कर दिया है, जिसमें उन्होंने विकसित देशों की तर्ज पर अधिक मुद्रा जारी करने की बात कही थी है। इस प्रकार की मांग से वैश्विक बाजार भारत जैसे उभरते बाजारों को खासा दंड दे सकते हैं। अर्जेंटिना और वेनेजुएला का उदाहरण हमारे सामने है।

पूरे विश्व के निवेशक डॉलर खरीदने में लगे हैं, और भारतीय मुद्रा का त्याग कर रहे हैं। अगर भारत चल रही नीतियों का ही अनुसरण करने का निर्णय लेता है, तो पहले से ही उच्च ब्याज दर और भी बढ़ जाएगी, और रुपये में निवेशकों का विश्वास कम हो जाएगा। इससे आर्थिक संकट भी उत्पन्न हो सकता है।

उम्मीद है कि सरकार द्वारा पहले से ही किए गए उपायों और गर्मी बढ़ने के साथ वायरस के संकट से निपटा जा सकेगा। अगर यह आशा गलत साबित हो गई, तो सारा परिदृश्य बदल जाएगा। भारत जैसे विकासशील देश में इसलिए सरकार को अन्य विकल्पों की योजना पर भी विचार करना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित रूचिर शर्मा के लेख पर आधारित। 31 मार्च, 2020